11

मानव समाज का विकास, प्रकृति और विशेषताएँ

* एम.के. साजू

प्रस्तावना

मानव जीवन की सर्वाधिक विशिष्टता उसका सामाजिक आचरण है। जीवित रहने के लिए सभी मानव परस्पर संपर्क करते हैं। मनुष्य समाज में रहता है और जीवित रहने के लिए उस पर निर्भर रहता है। इसलिए मनुष्य का स्वभाव और उसकी आवश्यकता उसे समाज में रहने के लिए विवश करती है। अनंतकाल से मानव सामाजिक वातावरण को समझने का प्रयत्न करता रहा है और समझने की अपनी तलाश में उसने विभिन्न सामाजिक विज्ञान जैसे समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान आदि की रचना की है। फिर भी, समाज का अध्ययन, उसकी कार्यप्रणाली, उसमें विद्यमान सामाजिक संबंध और पारस्परिक सामाजिक क्रियाओं का समाज के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक संबंध जो समाज का निर्माण करते हैं; अध्ययन करते समय समाज का मूल्यांकन, उसकी व्यवस्थाएँ और संरचनाएँ, संस्थाओं का विकास और उनकी कार्य प्रणाली, प्रथाएँ तथा सामाजिक संबंधों को नियंत्रित करने वाले नियम अतीतकाल से मानव द्वारा निर्मित समूह और समुदाय, परिवार, सरकार, आर्थिक समूह, धार्मिक समूह जैसे इन समूहों की प्रकृति और पारस्परिक निर्भरता तथा सामाजिक परिवर्तन की घटना का अध्ययन करना आवश्यक है। इस अध्याय में हम समाज, व्यक्ति और समाज के संबंध; समाज के संरचनात्मक घटक और समाजीकरण प्रक्रिया का मूल्यांकन करेंगे।

मानव समाज का विकास

समाज संबंधों की जटिल व्यवस्था है जो विविधता भरी है। समाज विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है तथा व्यापक परिवर्तनों से गुजरता है। आरंभिक काल में समाज बहुत सरल था और प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में रहता था तथा वह केवल अपने बारे में ही जानने और अपने लिए ही करने का प्रयास करता था। जहाँ तक संगठित जीवन का संबंध है प्रत्येक व्यक्ति कमोबेश इससे अनभिज्ञ था। इस अर्थ में सभी व्यक्ति एक जैसे थे। आरंभिक समय में वे सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने में सक्षम नहीं थे और न ही वे मिलकर कार्य सकते थे। इस प्रकार आरंभिक

* एम.के. साजू, बी एस एस एस, भोपाल

काल में समाज समरूप था सरल सामाजिक संबंध था। फिर भी, जैसे-जैसे समय में प्रगति हुई समाज ने सामाजिक संबंधों का जटिल स्वरूप लेना आरंभ कर दिया जो विविध प्रकार के थे।

हर्बर्ट स्पेंसर का विकास सिद्धांत

चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रतिपादित विकास सिद्धांत शरीर-रचना से संबंधित था। हर्बर्ट स्पेंसर उन आरंभिक समाजशास्त्रियों में से एक था जिन्होंने इस सिद्धांत को समाज शास्त्र में प्रस्तुत किया। हर्बर्ट स्पेंसर ने जीव सिद्धांत के समान सिद्धांत को समाज के बारे में प्रस्तुत किया जिसमें विचार व्यक्त किया गया है कि समाज भी विकास के विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है जैसे जीवन गुजरता है। हर्बर्ट स्पेंसर ने इस विकास योजना को पहले 'फर्स्ट प्रिंसिपल्स' में तथा पुन: 'प्रिंसिपल्स आफ सोसिओलॉजी' में प्रस्तुत किया है।

जैसा कि हम जानते हैं विकास सिद्धांत में कहा गया है कि सरल जीवन एक प्रक्रिया के माध्यम से जटिल जीवों में विकसित होता है जिसमें हजारों वर्ष लग जाते हैं। इसी प्रकार विकास विचार-धारा स्पष्ट करती है कि वर्तमान जटिल स्वरूप में आने से पूर्व समाज भी अनेक अवस्थाओं से गुजरा है। चूंकि समाज का विकास सिद्धांत इस संकल्पना पर आधारित है कि समाज जीव से मिलता है इसलिए जैव सिद्धांत का वर्णन करना आवश्यक है। जैव सिद्धांत समाज को जैविक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है। एक बड़ा जीव जो संरचना और कार्यप्रणाली में एक जैसा है और जो अकेले जीव की तरह उसी प्रकार की इकाई प्रकट करता हैं तथा विकास, पोषण एवं ह्रास के भी वही नियम लागू होते हैं। समाज की कोशिकाएँ व्यक्ति है उसके अंग और प्रणालियाँ, संघ तथा संस्थाएँ हैं। हर्बर्ट स्पेंसर कहता है कि समाज की बचपन, युवाकाल (चरम काल), वृद्धावस्था (क्षीणावस्था) और मृत्यु (समाप्ति) होती है।

स्पेंसर के अनुसार विकास के सिद्धांत हैं : (क) दृढ़ रहने वाली ताकतें, (ख) सामग्री अनश्वर है, और (ग) प्रत्येक वस्तु न्यूनतम प्रतिरोध या अत्यधिक आकर्षण से गतिशील होती है जो किसी स्रोत, सामग्री से प्रेरित होती है और जो समाप्त होने वाली गति की सहगामी शक्ति के साथ होती है इसमें संघटित होने की प्रवृत्ति होती है। स्पेंसर कहता है, "विकास सामग्री तथा गति समाप्त करने वाली सहगामी शक्तियों का संघटन है जिसमें सामग्री अनिश्चित असंगत समरूपता से निश्चित, संगत भिन्नता की तरफ जाती है" स्पेंसर के लिए समाज भी विकास की समान प्रक्रिया की तरह वस्तु है जो असंगत समरूपता की स्थिति से संगत विभिन्नता में परिवर्तित होती है। इस प्रकार विकास धीमी वृद्धि है या सरलता से जटिल अस्तित्व का विकास है।

आरंभिक समाजों में उनकी असंगतता या ढीली समूह संरचना के अलावा कोई व्यवस्था नहीं थी और कुछ भी निश्चित नहीं था। इसलिए उन्होंने एक अनिश्चित, असंगत समरूपता का निर्माण

किया लेकिन शनै: शनै: उनके अनुभव, अहसास तथा ज्ञान में वृद्धि हुई। उन्होंने इकठ्ठे रहना और कार्य करना सीख लिया। सामाजिक संगठन का कार्य शुरू किया गया, श्रम विभाजन को व्यापक बनाया गया और जो श्रेष्ठ कार्य कर सकता था उसे वही कार्य मिला। सभी लोग एक निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संगठित होकर निश्चित तरीके से प्रयास करने लगे। इस प्रकार निश्चित, संगत विभिन्नता की स्थिति प्राप्त हुई।

स्पेंसर के अनुसार विकास का मुख्य तथ्य था सरल समाजों से मिश्रित समाजों के विभिन्न स्तरों तक गति का होना। कुछ सरल समाजों के मिश्रण से मिश्रित समाजों की उत्पत्ति हुई। फिर मिश्रित समाजों के मिश्रण से दोहरे मिश्रित समाजों की उत्पत्ति हुई। इसके बाद दोहरे मिश्रित समाजों के मिश्रण से तिहरे मिश्रित समाज बने। एक सरल समाज में परिवार होते हैं, परिवारों का मिश्रित समाज से कुल (गोत्र) बने, कुलों संयुक्त दोहरे मिश्रित समाज कबीलों के रूप में एकत्रित हुए तथा कबीलों वाले मिश्रित समाज जैसे कि हमारा समाज है, वे समाज है जिनमें कबीलों को मिला कर राष्ट्र या राज्य बने है। आकार में वृद्धि के साथ संरचना में वृद्धि हुई तथा सदस्यों के अधिकार एवं व्यवसायों के अन्तर में वृद्धि हुई।

अगस्त काम्टे के अनुसार समाज का विकास

समाज शास्त्र के जनक अगस्त काम्टे ने भी समाज विकास का एक सुव्यवस्थित सिद्धांत प्रस्तुत किया है। समाज के विकास पर प्रस्तुत उनका सिद्धांत तीन अवस्थाओं के नियम पर आधारित है। इस नियम के अनुसार [illegible] का विकास तीन विभिन्न अवस्थाओं से होता है। या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि तीन विभिन्न अवस्थाएँ हैं जिनमें मानव मस्तिष्क घटना की व्याख्या करता है और प्रत्येक अवस्था क्रमशः अगली अवस्था की ओर ले जाती है। ये तीन अवस्थाएं है :

1) **ईश्वरीय या कल्पना अवस्था** : इस अवस्था में मानव मस्तिष्क जीवों की स्वभाविक प्रकृति, सभी प्रभावों के प्रथम और अंतिम कारणों (उत्पत्ति और उद्देश्य) संक्षेप में कहें तो संपूर्ण ज्ञान को समझने लगता है।

2) **अतिसूक्ष्म या अमूर्त अवस्था** : जहाँ तक मस्तिष्क द्वारा अमूर्त शक्तियों और मूर्त कल्पनाओं की कल्पना करने का संबंध है यह पहली अवस्था की संशोधित अवस्था है जो अलौकिक जीवों के बजाय सभी जीवों में वंशानुगत होती है और सभी घटनाओं को प्रस्तुत करने में सक्षम होती है।

3) **सकारात्मक और वैज्ञानिक अवस्था** : अंतिम अवस्था में मस्तिष्क व्यर्थ की तलाश, असीम विचार, विश्व की उत्पत्ति और लक्ष्य घटनाओं के कारणों को छोड़ देता है और उनके

नियमों के अध्ययन पर ध्यान लगाता है जिनके साथ उनका क्रम और समरूपता का अपरिवर्तनीय संबंध है। तर्क और अध्ययन इस ज्ञान का विधिवत मिश्रित साधन है।

काम्टे ने मानव सोच की अवस्थाओं और सामाजिक संगठन के बीच प्रत्यक्ष संबंध तलाश किया है। दूसरे शब्दों में काम्टे की चर्चा यह है कि मानव सोच की प्रत्येक अवस्था सामाजिक संगठन के विशेष प्रकार की द्योतक है।

जब मानव मस्तिष्क इश्वरीय अवस्था में होता है उदाहरण के लिए राजनीतिक घटनाएँ प्रभु इच्छा के द्वारा हुई बताई जाती थी और राज का अधिकार दैव अधिकार पर आधारित होता था। सेना और राजतंत्रीय सामाजिक संगठन इश्वरीय सोच का मूल सिद्धांत था। राजाओं को भगवान का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि या धरती पर भगवान के बाद भगवान के मार्गदर्शन में धरती पर समाज का शासन करने वाला माना जाता था।

मस्तिष्क की अतिसूक्ष्म अवस्था में राजनीतिक सत्ता अमूर्त अधिकार के सिद्धांत पर आधारित थी। बाद में दैवीय अधिकार को छोड़ दिया गया और उसके स्थान पर प्राकृतिक अधिकार मनुष्यों के राजनीतिक संबंधों का निर्णय करने लगे। सामाजिक संगठनों का कानूनी वक्ष विकसित हुआ जिसके परिणामस्वरूप यह औपचारिक और संरचनात्मक होने लगा। सकारात्मक अवस्था में समाज औद्योगिक काल में प्रवेश करता है। इस अवस्था में हमारा सम्पूर्ण ज्ञान वास्तविक होने लगा या हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो गया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप भौतिक सामग्री संबंधी खोज होने लगी और इस प्रकार प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग होने लगा।

समाज विकास सिद्धांत की विशेषताएँ :

- सरल से जटिल समाज की ओर बढ़ना।
- समरूपता से विभिन्नता
- क्रमिक और धीमी प्रक्रिया
- परिवर्तित हो रहे वातावरण और सामाजिक संदर्भ का अनुकूलन।
- सामाजिक व्यवस्था में संबंधित परिवर्तनों की कड़ी।
- बड़े आकार, सामांजस्य और निश्चितता की ओर प्रगति।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आप जो समाज है उसने वह क्रमिक रूप से धीरे-धीरे निरंतर परिवर्तन और रूपांतरण का लम्बा रास्ता तय किया है। समाज के किसी भी पक्ष में परिवर्तन अचानक नहीं हुआ है। फिर भी सामाजिक परिवर्तन निरंतर हो रहे हैं। और समाज एक निरन्तर परिवर्तन शील चीज है जो बढती है। और क्षीण होती है। स्वयं पन: नवनिर्मित होती

है, और परिवर्तित परिस्थितियों में स्वयं को ढालती है तथा समय के अन्तराल में इसमें व्यापक परिवर्तन होते है।

संबंध प्रणाली के रूप में समाज

अरस्तु ने कहा था कि मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य भी पशु हैं जो समाजों में रहते हैं। फिर मनुष्य अकेला ऐसा प्राणी नहीं है जो समाज में रहता है। चींटियों, दीमक, पक्षी, बंदर, लंगूर और असंख्य अन्य जीव जन्तु भी ऐसा ही करते है। लेकिन समूह में जीवन व्यतीत करने का अर्थ यह नहीं है कि इनका भी समाज है या मानव समाज भी पशुओं के समाज जैसा है। पशु समाज और मानव समाज में अंतर जानने के लिए समाज की परिभाषा तथा मानव समाज में स्थित सामाजिक संबंधों को जानना आवश्यक है।

समाज शास्त्र के संदर्भ मे 'समाज' शब्द लोगो के समूह में उत्पन्न पारस्परिक संबंधों के नियमों के जटिल स्वरूप का द्योतक है। जबकि सामान्य बोल-चाल में समाज' शब्द समूह विशेष के सदस्यों का निर्दिष्ट करता है तथा प्राय: निश्चित उक्तियो के संबंध में समझा जाता है। समाज शास्त्र में मनुष्यों का उन सामाजिक संबंधों की एजेंसी होने के रूप में ही महत्व है जो अमूर्त है। इसलिए समाज संबंधो की तथा समाज के सदस्यों के द्वारा स्वयं को बनाए रखने के लिए पारस्परिक संबंधों के नियमों के स्वरूप की प्रणाली है।

समाज की परिभाषा

मेकाइवर एवं पेज ने समाज को इस प्रकार परिभाषित किया है कि यह सामाजिक संबंधों का ताना-बाना है। पारसंस कहता है, "समाज को उन मानव संबंधों के समग्र समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहाँ तक ये उद्देश्यपूर्ण संबंधों के कारण निजी या प्रतीकात्मक कार्यों के परिणाम स्वरूप बनते है।" गिडिंग्स की परिभाषा है कि, "समाज स्वयं में एक यूनियन, संगठन या औपचारिक संबंधों का योग है जिनमें शामिल होने वाले व्यक्ति परस्पर संबद्ध होते हैं।". लैपीयर समाज में दिखाई देने वाले पारस्परिक संबंधों के जटिल स्वरूप पर जोर देता है। उसकी परिभाषा है, "समाज शब्द न केवल लोगों के समूह का द्योतक है अपितु उसमें तथा उनके बीच उत्पन्न पारस्परिक संबंधों में जटिल स्वरूप के नियमों की भी अभिव्यक्ति हो" प्रो. रिट इस बात पर जोर देते है कि लोगों के जमावड़े को समाज कहना आवश्यक नहीं है। उनके अनुसार, "समाज लोगों का समूह नहीं है। यह समूह के सदस्यों के बीच विद्यमान संबंधों की व्यवस्था है"।

प्राय: समाज की तथा उसमें विद्यमान संबंधों की परिभाषा में दो विचारधाराएँ प्रकट होती हैं।

1) **कार्यात्मक दृष्टिकोण** : समाज को उन पारस्परिक संबंधों वाले समूहों के मिश्रण के रूप में परिभाषित किया जाता है जो एक दूसरे के साथ संबंध रखते हैं, मनुष्यों को जीवन की गतिविधियाँ करने में उनकी सहायता करते हैं तथा समूह के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर अपनी इच्छाएँ और उद्देश्यों को पूरा करते हैं। यह विचारधारा सामाजिक संबंधों को कुछ उद्देश्यों के साधन रूप में उद्धृत करती है।

2) **संरचनात्मक दृष्टिकोण** : इस विचारधारा के अनुसार समाज लोक प्रथाओं, रीति रिवाज और संस्थाओं, आदतों, भावनाओं और आदर्शों की संपूर्ण सामाजिक धरोहर है। दूसरे शब्दों में समाज को सामाजिक संबंधों की व्यवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। जो परस्पर गहन रूप से संबंधित होती हैं।

एक बार संबंधों की सामाजिक प्रकृति की व्याख्या हो जाए तो समाज पर चर्चा करना सरल हो जाता है। कुछ समाज शास्त्रियों का कहना है कि समाज तब तक ही अस्तित्व में रहता है जब तक उसके सदस्य एक दूसरे को जानते हैं तथा उनके एक समान लक्ष्य या उद्देश्य होते हैं। यदि कोई दो व्यक्ति रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे हैं तो एक ही डब्बे में एक ही समय और एक ही स्थान पर उनके सह-अस्तित्व का संबंध समाज की स्थापना नहीं करता। लेकिन जैसे ही वे एक-दूसरे को जानने लगते हैं तो समाज घटक उत्पन्न हो जाता है। इसलिए किसी सामाजिक संबंध के लिए परस्पर जानकारी होना आवश्यक है।

फिर भी सामाजिक संबंधों के लिए शारीरिक निकटता होना एक मात्र मानदंड नहीं है जैसे सूर्य और भूमि, आग और धुँआ तथा टाइप मशीन और मेज जैसी जड़ वस्तुओं के संबंधों की तुलना करते हुए हम सिद्ध कर सकते हैं कि जड़ वस्तुओं और मनुष्यों के बीच संबंधों में अत्यधिक अंतर है। टाइप मशीन और मेज को एक-दूसरे की उपस्थिति का बोध नहीं होता। उनके संबंध को किसी भी तरह पारस्परिक जानकारी के द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता। इसकी पहचान के बिना कोई सामाजिक संबंध व समाज नहीं होता। समाज का अस्तित्व एक दूसरे की भौतिक जानकारी के अभाव में नहीं होता। यही कारण है कि हम सामाजिक संबंधों को पारस्परिक जानकारी कहते हैं। सामाजिक संबंधों के अर्थ और प्रकृति को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि समाज तभी रह सकता है जहाँ सामाजिक मनुष्य परस्पर एक दूसरे की मान्यता के द्वारा निर्धारित तरीके से व्यवहार करते हैं। इस प्रकार निर्धारित संबंधों को हम मोटे तौर पर सामाजिक कह सकते हैं।

सामाजिक संबंधों के ताने-बाने के रूप में समाज

मैक्लवेर एवं पेज के अनुसार "समाज सामाजिक संबंधों का ताना-बाना है जो विभिन्न प्रकार का हो सकता है।" इस प्रकार मैक्लवेर एवं पेज ने कहा कि समाज विभिन्न सामाजिक संबंधों का नेटवर्क है या दूसरे शब्दों में समाज को किसी समूह में स्थित सामाजिक संबंधों की संपूर्णता कहा जा सकता है।

समाज में व्यक्तियों के पारस्परिक संपर्क तथा परस्पर अंतर-संबंध शामिल है और यह इन संबंधों से निर्मित संरचना है। समाज को बनाने वाले सदस्यों को अपनी संबद्धता तथा अन्योनाश्रितता को जानना आवश्यक है। उनमें सामुदायिकता होनी चाहिए। समाज मनुष्यों को आराम प्रदान करने वाली एजेंसी ही नहीं है यह सामाजिक संबंधों की संपूर्ण व्यवस्था है। उदाहरण के लिए माँ और बच्चे का सामाजिक संबंध उनके एक-दूसरे प्रति दृष्टिकोण से प्रकट होते हैं। यह जैविक तथ्य न होकर सामाजिक तथ्य है जो समाज का निर्माण करता है।

समाज का वास्तविक स्वरूप अन्योन्याश्रित या संबद्धता अथवा अधिकारों के बाहरी घटकों से नहीं अपितु समाज का निर्माण करने वाले मनुष्यों के विचारों में होता है। लोगों को नहीं स्वरूप को समाज कहा जाता है और यह समूह नहीं अपितु संबंधों की प्रक्रिया होती है। इसलिए समाज सामाजिक संबंधों का स्वरूप या सामाजिक संबंधों की व्यवस्था है। सभी समाजों में संयोजन का कुछ स्तर होता है। इसी प्रकार समाज में केवल संरचना की अपेक्षा मस्तिष्क की स्थिति या क्वालिटी शामिल होती है। समाज बनाने वाले मनुष्यों को अपनी संबद्धता और अन्योन्याश्रिता का अनुभव करना चाहिए। व्यक्तियों के संबंध समाज के नियमों के अनुसार होने चाहिए और इस प्रकार समाज लोगों का जमावड़ा मात्र नहीं है अपितु समूह के सदस्यों के बीच विद्यमान संबंधों की व्यवस्था है। यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज एक स्थाई संस्था है। इसका उद्भव इतिहास के उद्भव के साथ है जो धरती पर हर उस जगह फैल गया है जहां मनुष्य एक साथ रहते हैं। यह प्राकृतिक संगठन की तरह है जो मनुष्य की नैसर्गिक वृत्ति के कारण उत्पन्न हुआ है। यही कारण है कि अरस्तु ने सही कहा है कि मनुष्य अपनी प्रकृति से सामाजिक प्राणी है। इसका अर्थ है कि जब तक मनुष्य का अस्तित्व रहेगा तब तक समाज का अस्तित्व रहेगा।

समाज की विशेषताएँ

1) **समाज में साम्यता शामिल होती है :** साम्यता और साम्यता की भावना के बिना परस्पर एक साथ होने की मान्यता नहीं हो सकती और इस प्रकार समाज नहीं होगा। समाज का अस्तित्व उन्हीं में हो सकता है जो शारीरिक और मानसिक रूप से कुछ हद तक एक दूसरे से साम्य रखते हैं तथा जो इस तथ्य को काफी हद तक या पूरी तरह स्वीकार करते हैं।

2) **समाज में भिन्नताएँ होती हैं :** यद्यपि साम्यता समाज का आधार है तो भी समाज भिन्नताओं पर भी निर्भर करता है। यदि सभी लोग पूरी तरह समान होंगे तो उनके सामाजिक संबंध इतने ही सीमित होंगे जितने की चीटियों और मधुमक्खियों के जैविक अंग सीमित होते है। चीटियों और मधुमक्खियों के समूहों में अन्योन्याय प्रणाली नहीं होती जबकि उनका प्रत्येक सदस्य परस्पर पूरी तरह एक समान होता है। मानव समाज में विभिन्न व्यक्ति एक दूसरे के पूरक होते हैं और इस प्रकार सार्थक सामाजिक पारस्परिक संबंध बनते हैं। हमारे समाज में साम्यता और असाम्यता की अंनत अन्योन्य क्रिया होती है। भिन्नताओं का पारस्परिक संबंध समाज के प्रत्येक स्तर पर देखा जा सकता है। जैसे परिवार जैविक लिंगीय भिन्नताओं पर निर्भर करता है। समाज में धारणाओं , क्षमता और रुचियों में भी स्वभाविक भिन्नता होती है।

3) **भिन्नता साम्यता से गौण है :** समाज में साम्यता तथा भिन्नता दोनों आवश्यक होते हैं। समाज के लिए भिन्नता आवश्यक तो होती है लेकिन मात्र भिन्नता से समाज नहीं बन सकता। भिन्नता समानता से गौण होती है या साम्यता अग्रगामी है, जबकि भिन्नता या असमानता समाज के सदस्यों के बीच पारस्परिकता का आधार बनाती है। जैसा कि मैकाइवर कहता है, "मौलिक साम्यता और परवर्ती भिन्नता सभी सामाजिक संस्थाओं को श्रेष्ठ बनाती हैं जैसे श्रम का विभाजन। श्रम विभाजन जो भिन्नता के आधार पर कार्य करता है मूलत: विभाजन से पूर्व सहयोग है। या यह एक समान उद्देश्य के लिए विभिन्न व्यक्तियों की योग्यताओं का उपयोग करने का विवेकपूर्ण प्रयत्न है।

4) **समाज में एक दूसरे पर आश्रितता :** साम्यता की तरह सहयोग पर आधारित अन्योन्याश्रितता भी समाज की संरचना के लिए एक और आवश्यक घटक है। कोई भी समाज अपनी इकाइयों की अन्योन्याश्रितता के बिना जीवित नहीं रह सकता। समाज के सदस्यों को समाज की सुचारू कार्य प्रणाली के लिए परस्पर आश्रित और सहयोग करना चाहिए। कोई भी व्यक्ति समाज में एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता क्योंकि समाज उनके लिए आवश्यक है। इसलिए समाज के सदस्यों में परस्पर निर्भरता होती है।

5) **संबंधों की विविधता :** समाज में अनेक प्रकार के संबंध होते हैं जो हमारों प्रकार के हो सकते हैं। केवल परिवार में ही आयु, लिंग और पीढ़ी के आधार पर 15 प्रकार के संबंध होते हैं। परिवार से बाहर संभावित सामाजिक संबंधों की कोई सीमा नहीं है। सामाजिक संबंध उतने ही विविध है जितने कि समाज जटिल है। इनमें से कुछ संबंध है मतदाता का उम्मीदवार से, माता का बच्चे से, नियोक्ता का कर्मचारी से, मित्र का मित्र से, शिक्षक का छात्र से, छात्र का छात्र से आदि। इन सामाजिक संबंधों को आर्थिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, अवैयक्तिक, मित्रता, विरोधी और ऐसे ही अन्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

ये विशेषताएँ समाज की प्रकृति और सामाजिक संबंधों की व्यवस्था को स्पष्ट करती हैं। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त चर्चा यह भी स्पष्ट करती है कि मानव समाज में व्यक्तियों के बीच विद्यमान संबंधों की सामाजिक प्रकृति मानव समाज को पशु समाज से भिन्न बनाती है।

व्यक्ति एवं समाज

समाज उन व्यक्तियों से बनता है जो प्रकृति से सामाजिक है। यह भी वर्णन है कि व्यक्ति और समाज परस्पर आश्रित होते हैं। उनमें यह संबंध एक पक्षीय नहीं होते। प्रत्येक की प्रगति के लिए दोनों का होना आवश्यक है। न तो व्यक्ति समाज से संबंधित होता है जैसा कि कोशिका शरीर रचना से होती है और न ही समाज मनुष्यों की कुछ आवश्यकताएँ पूरी करने की योजना है। मनुष्य की नैसर्गिक विशेषता अर्थात् उसकी सामाजिक प्रकृति उसे समाज में बनाए रखती है। व्यक्ति और समाज के बीच संबंध स्थापित करने के लिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मनुष्य किस अर्थ में सामाजिक प्राणी है। इसी प्रकार कुछ अन्य प्रश्न भी है जिनका उत्तर देना आवश्यक है। किस अर्थ में हम समाज से संबंधित है? किस अर्थ में समाज हम से संबंधित है? इस पर हमारी निर्भरता किस प्रकार की है? समग्रता की एकता की व्याख्या किस प्रकार करेंगे जिसमें रहने वाले हमारे सदस्य संबद्ध होते हैं। ये सभी प्रश्न एक मूलभूत प्रश्न के पक्ष हैं– समाज का व्यक्ति, समूह और सामाजिक व्यवस्था से संबंधित निम्नलिखित भाग उपर्युक्त मूलभूत प्रश्नों का उत्तर प्रदान करेंगे।

मानव स्वभाव से सामाजिक है

मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है और वह अकेला नहीं रह सकता। किसी भी एकाकी व्यक्ति के सामान्य विकास का पता नहीं चला है। व्यक्ति दूसरों के साथ रह कर ही सामाजिक आदतें सीखते हैं और सामाजिक गुण ग्रहण करते हैं। ऐसे मामले भी है कि जब कभी व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत करने पर उसके व्यक्तित्व का सामान्य विकास स्थापित हुआ है। मैक्लवेर ने एक मामले का उदाहरण दिया है जिसमें 1920 में मारे गए भेड़िए की गोद में दो हिन्दू बच्चे पाए गए और उन दोनों की योग्यताएँ गंभीर रूप से बाधित थी। छोटे बच्चे की आयु दो वर्ष से कम थी जो गोद में से निकालने के बाद शीघ्र ही मर गया। दूसरा बच्चा 8 वर्ष का था जो दोनों हाथ और दोनों पैरों चारों पर झुककर चलता था। वह भेड़िए की गुर्राहट के अलावा कुछ भी नहीं बोल सकता था। वह मनुष्यों से संकोच करती थी तथा उनकी उपस्थिति में डर जाती थी। उसे कुछ सामाजिक आदतें सीखाने में गंभीर, सहानुभूति पूर्ण और व्यापक प्रशिक्षण का सहारा लेना पड़ा। मनुष्य में मानवीय स्वभाव तभी विकसित होते हैं जब वह समाज में रहता है तथा अपने साथियों के साथ पारस्परिक सामान्य जीवन जीता है। मानवी गुण जो बच्चे में होते हैं मानव संबंधों की संगति में ही विकसित हो सकते हैं। समाज प्रत्येक व्यक्ति के निर्माण की महत्वपूर्ण आवश्यकता पूरी करता है और मनुष्य का सामाजिक पहलू बहुत आवश्यक है।

आवश्यकता मनुष्य को सामाजिक बनाती है :

मनुष्य समाज में इसलिए भी रहता है क्योंकि उसकी आवश्यकता उसे विवश करती है। यदि वह अपने साथी मनुष्यों के साथ सहयोग नहीं करता है तो उसकी अनेक आवश्यकताएँ अधूरी रह जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति पुरुष और महिला के बीच स्थापित सामाजिक संबंध की संतान होता है। बच्चा अपने अभिभावकों की देखरेख में पलता है और नागरिकता के पाठ उनकी संगति में ही रह सकता। नवजात बच्चा इतना असहाय व आश्रित होता है कि वह कई वर्षों तक अपनी सुरक्षा नहीं कर सकता। इसके विपरीत अन्य पशुओं के नवजात शिशु अपने जन्म के बाद कुछ ही घंटों में आत्म निर्भर हो जाता है। बछड़ा अपने जन्म के एक घंटे के अंदर ही अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है तथा कुछ ही घंटों में घास खाने लगता है। यही स्थिति अधिकतर पशुओं के साथ होती है। व्यक्तियों को भोजन आश्रय तथा वस्त्रों की आवश्यकता होती है जो दूसरे के साथ सहयोग करने से ही पूरी होती है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक विकास के लिए समाज का महत्व स्पष्ट है और जब तक व्यक्ति समाज में नहीं रहता वह मानव नहीं बन सकता। कई बार पशुओं को भय या प्रेरणा के कारण दूसरों से स्वीकृति या मान्यता प्राप्त करनी पड़ती है या भूख प्यास और लैंगिकता की पूर्ति करने के लिए उन्हें समूहों में रहना पड़ता है। आत्म परिरक्षण (वंश सुरक्षित) की आवश्यकता प्रत्येक प्राणी द्वारा महसूस की जाती है यह भी मनुष्य को सामाजिक बनाती है। अत: मनुष्य के स्वभाव के कारण ही नहीं उसकी आवश्यकताएँ भी उसे समाज में रहने के लिए विवश करती है।

समाज से व्यक्तित्व का निर्धारण होता है

मनुष्य समाज में न केवल जीवित रहने और अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए समाज में रहता है अपितु अपने समग्र मानसिक विकास एवं बौद्धिक विकास के लिए भी समाज में रहता है। समाज हमारी संस्कृति को सुरक्षित रखता है तथा आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। यह व्यक्तियों के रूप में हमारी क्षमताओं का विकास एवं नियंत्रण करता है तथा हमारी मनोवृत्ति, विश्वास, चरित्र तथा आदर्शों का भी निर्माण करता है। समाज से दूर रहने वाले व्यक्ति का मस्तिष्क वयस्क की आयु में भी बच्चे के बराबर होता है। समाज में रहते हुए सदस्य जो सांस्कृतिक धरोहर आत्मसात करता है उससे व्यक्तित्व का निर्धारण होता है और इस प्रकार उस व्यक्ति का मानसिक स्तर का निर्णय होता है।

व्यक्ति और समाज के बीच संबंधों के बारे में सिद्धांत

समाज की उत्पत्ति के बारे में अनेक सिद्धांत है जिनमें ईश्वरीय उत्पत्ति, शक्ति सिद्धांत, पैतृक और मातृक सिद्धांत, सामाजिक संविदा सिद्धांत तथा जैविक सिद्धांत शामिल हैं। ईश्वरीय उत्पत्ति सिद्धांत कहता है कि भगवान ने समाज की उत्पत्ति की है जैसे भगवान ने सभी जीव जन्तु और

इस संसार की जड़ वस्तुएँ बनाई है इसी प्रकार उसने समाज का भी निर्माण किया है। जबकि शक्ति सिद्धांत समाज को शारीरिक रूप से शक्तिशाली द्वारा निर्बल को हथियाने का परिणाम मानता है। पैतृक और मातृक सिद्धांत समाज को परिवार व्यवस्था का विस्तार मानते हैं। इसके अतिरिक्त दो ऐसे सिद्धांत हैं जिन्हें समाजशास्त्रियों ने सर्वाधिक स्वीकार किया है। ये है सामाजिक संविदा सिद्धांत और जैव सिद्धांत। इन दोनों सिद्धांतों की आगे संक्षिप्त चर्चा से व्यक्ति और समाज के बीच का संबंध और अच्छी तरह स्पष्ट हो जाएगा।

1) सामाजिक संविदा सिद्धांत

ईशा पूर्व कम से कम पाँचवी शदी से विभिन्न विचारक समाज को कुछ उद्देश्यों के लिए पुरुष द्वारा सोच समझ कर किया गया आविष्कार या व्यवस्था के रूप में स्वीकार करते थे। थॉमस हॉब्स जैसे कुछ विचारकों का मत था कि समाज मनुष्यों की असहिष्णु और झगड़ालू प्रकृति के परिणामों से उसकी सुरक्षा करता है। उसके अनुसार मनुष्य अपनी प्राकृतिक अवस्था में अपने स्वभाविक स्वार्थी स्वभाव के कारण अपने पड़ोसियों से स्थायी रूप से संघर्ष करता रहता था। हॉब्स के शब्दों में व्यक्ति जीवन एकाकी, निर्धन, घिनौना, पाशविक, और छोटा था।" प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शत्रु था। बूरे परिणामों से बचाव के लिए सब के साथ शांतिपूर्वक रहने की खातिर उसने स्वयं को समाज में संगठित कर लिया। लोक, जैसे रोसपू एवं एडमस्मिथ ने भी इस सिद्धांत का समर्थन किया है। एडम स्मिथ ने कहा है कि समाज पारस्परिक अर्थव्यवस्था का पोषण करने के लिए बनाई गई संस्था है।

इस सिद्धांत की आलोचना में कहा गया है कि इसमें समाज से पूर्ण व्यक्ति को माना गया है और उसे एकेला माना जाता है। ऐसा लगता है कि मनुष्य ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समाज को बनाया है। यह विचार स्वीकार्य नहीं है क्योंकि सामाजिकता मनुष्य में जन्मजात होती है और वह केवल समाज में रह कर ही जी सकता है।

2) समाज का जैविक सिद्धांत

यह सिद्धांत अरस्तू और प्लेटो जितना पुराना है। इस सिद्धांत में समाज को जैविक जैवीय प्रणाली के समान ग्रहण किया गया है। एक बड़ी शरीर संरचना जो अपनी बनावट और कार्य प्रणाली में एक जैसी है एकल जैव की तरह उसी की भांति एकता प्रकट होती है तथा विकास परिपक्वता एवं ह्रास का भी वही सिद्धांत है। समाज की कोशिकाएँ अलग-अलग व्यक्ति है। इसके अंग और कार्य प्रणालियाँ एसोसिएशनें एवं संस्थाएँ है। हर्बर्ट स्पेंसर के अनुसार राज्य भी मानव शरीर की तरह बढने और ह्रास होने वाले उसी नियम के अन्तर्गत आते हैं। इनका भी उत्पत्तिकाल सर्वोत्तम काल, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। बलेटस्ली और मुरे ने भी समाज उत्पत्ति के बारे में जैव सिद्धांत का समर्थन किया है। जैव सिद्धांत की आलोचना के बारे में कहा जाता है कि

समाज और व्यक्ति के जैव में बहुत अंतर होता है और जैविक समरूपता व्यक्ति और समाज के बीच संबंध को ठीक उसी तरह परिभाषित नहीं कर सकती। मानव समाज में इकाई अपनी उसी अवस्था में स्थिर नहीं रहती जबकि शरीर में उसके अंग स्थिर रहते हैं। एक अन्य आलोचना यह है कि समाज की इकाइयाँ व्यक्ति बिखरे रहते है और व्यक्ति शरीर की कोशिकाओं की तरह शारीरिक रूप से जुड़े नहीं रहते।

व्यक्ति और समाज का संबंध दोनों के लिए पूरक है एक के बिना दूसरा जीवित नहीं रह सकता। न तो समाज का उसके द्वारा सदस्यों को प्रदान की जाने वाली सेवा के अभाव में कोई मूल्य है और न ही व्यक्ति समाज के बीच उन्नति कर सकता है। न तो समाज मानव व्यक्तित्व के विकास के प्रतिकूल है और न ही यह अपने आप टिक सकता है।

समाजीकरण

जब एक मानव बच्चा पैदा होता है तो यह अपनी नैसर्गिकताओं के साथ तक जैविक शरीर होता है। उस समय इसमें सामान्य वयस्क व्यक्तियों जैसी कोई योग्ता नहीं होती। बच्चा अपनी माता से चिपटने और दूध चूसने के अलावा कुछ नहीं जानता। इस प्रकार बच्चा एक सामाजिक प्राणी होने की अपेक्षा तक जैविक शरीर रचना होती है। धीरे-धीरे वह सामाजिक कार्यप्रणाली और अनुभव को सीखने के द्वारा समाज में रहना सीख जाता है। समय गुजरने के बाद बच्चा बहुत कुछ जानने लगता है जो अन्यथा नहीं जान पाता। वह अपने अभिभावकों के चेहरे पहचानना और बढ़ना सीख लेता है, आवाजें करना, खड़ा होना, भाषा सीख जाता है तथा शिक्षा ग्रहण करने लगता है। इस प्रकार शिक्षण प्रक्रिया व्यक्ति की मृत्यु तक निरंतर जारी रहती है।

समाजीकरण का अर्थ

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक नियमों के अनुरूप सीखने लगता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज को स्थायी बनाती है और इनकी संस्कृति को आने वाली पीढ़ियों में संप्रेषित करती है, समाजीकरण को प्राय: ऐसी धीमी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज के कार्यकारी सदस्य बन जाते हैं।

आगबर्न कहता है 'समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति समूह के नियमों के अनुरूप सीखने लगता है' मेकाइवर के अनुसार समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा सामाजिक प्राणी परस्पर व्यापक और घनिष्ठ संबंध बनाते हैं। जिसमें वे और अधिक संबद्ध हो जाते हैं और अपने व दूसरों के व्यक्तित्व के बारे में अधिक जानने लगते हैं तथा निकटता और व्यापक एसोसिएशन की जटिल संरचना बना लेते हैं।

जैसा कि समाजीकरण की प्रक्रिया बताती है कि यह जैविक प्राणी का सामाजिक व्यक्ति में धीमा परिवर्तन है या व्यक्ति द्वारा मानव व्यवहार के पारम्परिक रूप ग्रहण करने की एक प्रक्रिया है। लुनबर्ग के अनुसार सामाजीकरण में पारस्परिक संबंधों की एक जटिल प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति सामाजिक समूह और समुदायों में प्रभावशाली ढंग से शामिल होने के लिए आवश्यक आदतें, निपुणताएं, विश्वास और निर्णय करने के मानक सीखता है। समाजीकरण को सामाजिक नियमों को आत्मसात करने के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति समाज के अनुरूप होने की आवश्यकता महसूस करता है और वह सामाजिक नियमों को इस प्रकार आत्मसात करता है कि वे बाहरी साधनों के द्वारा थोपने की अपेक्षा स्वयं व्यक्ति द्वारा अपने ऊपर लागू किए जाते है। इस प्रकार ये नियम व्यक्ति के व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाते हैं। यह सामाजिक पारस्परिकता का एक अनिवार्य तथ्य है। प्रत्येक व्यक्ति समाज में रहना और अपनी सामाजिक पहचान प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार वे दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार अपने कार्य करते हैं।

सामान्यत: समाजीकरण व्यक्ति और समाज के लिए समान रूप से आवश्यक है; एक तरफ तो समाजीकरण कार्य के सामाजिक तरीके सीखने के द्वारा सामाजिक स्वीकृति और स्थिति प्राप्त करने में व्यक्ति की सहायता करता है और दूसरी तरफ समाजीकरण की प्रक्रिया सुधारू और स्थायी अस्तित्व बनाये रखने में समाज की सहायता करती है। यदि समाज के सदस्य समूह के नियमों के अनुसार व्यवहार नहीं करेंगे तो वे इससे अलग हो सकते है, इसलिए सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए सदस्यों को समाजिक बनाना समाज के लिए आवश्यक है।

समाजीकरण की एजेंसियाँ

समाजीकरण की प्रक्रिया जन्म से प्रारम्भ होती है और व्यक्ति की मृत्यु तक निरंतर जारी रहती है। इस प्रकार व्यक्ति का जीवन एक न समाप्त होने वाली शिक्षण प्रक्रिया है। व्यक्ति के जीवन काल में अनेक एजेंसियाँ सक्रिय हो जाती हैं और वह मुख्यत: अनुकरण और सुझावों के द्वारा इन एजेंसियों से शिक्षा ग्रहण करता है। एक बच्चा अनुकरण करता है और खड़ा होना, चलना तथा अन्य नैसर्गिक निपुणताओं जैसी अनेक क्रियाएँ सीखता है। इसी प्रकार वह भाषा, चित्र या अन्य ऐसे किसी माध्यम के द्वारा संप्रेषित निर्देशों से भी सीखता है। बच्चे अपने व्यक्ति परिवार, स्कूल तथा साथियों आदि से व्यवहार का सामाजिक स्वरूप सीखता है। जबकि बड़े होने पर व्यक्ति धर्म, राज्य कार्य करने वाले साथियों आदि से सीखता है इस प्रकार समाजीकरण की वे एजेंसियाँ हैं जो व्यक्ति की एक या अनेक तरह से नए सामाजिक तरीके सीखने में सहायता करतीं है। आइए अब हम समाजीकरण की मुख्य एजेंसियों के बारे में संक्षिप्त चर्चा करें।

1) **परिवार** : बच्चा परिवार में पैदा होता है और आपके अभिभावकों तथा निकट सम्बन्धियों द्वारा इसका पालन पोषण होता है और इसकी देखभाल की जाती है। बचपन में अपने अभिभावकों के साथ शारीरिक रूप से निकट होने के कारण ये ही सर्वप्रथम बच्चे को समाजिक बनाते हैं। बच्चा अपने अभिभावकों से बोलना और भाषा सीखता है। इस प्रकार वास्तव में परिवार को समाजिक गुणों का पालना कहा जाता है जहाँ से बच्चा प्यार, स्नेह, सहयोग, सहिष्णुता तथा आत्म त्याग का प्रथम पाठ सीखता है इस प्रकार परिवार व्यक्ति की समाजीकरण प्रक्रिया की नींव के रूप में कार्य करता है।

2) **धर्म** : धर्म अपने अनुयायियों के लिए व्यावहारिक मानक निर्धारित करने के द्वारा लोगों के व्यवहार को संवारता है और निर्देशित करता है। धर्म पवित्रता के अर्थ में विश्वासों और अनुष्ठानों की एक प्रणाली है जो लोगों को समाजिक समूहों में बांधती है। निरापवाद रूप से सभी धर्मों में अनेक मान्यताएँ होती हैं और वे अपने अनुयायियों को अपने सिद्धांतों का पालन करना सिखाती है। उदाहरण के लिए हिन्दू, मुस्लमान, ईसाई, सिक्ख आदि धार्मिक समूहों के अपनी अपनी आचार संहिताएँ है जिनका उनके अनुयायियों को पालन करना होता है। इस प्रकार धर्म लोगों के व्यवहार पर नियंत्रण रखता है।

3) **समकक्ष समूह एवं मित्र** : बच्चे और उसके मित्रों के बीच संबंध परस्पर देने और लेने का होता है और सहयोग तथा आपसी समझ पर निर्भर होता है। चूंकि अधिकतर मित्र एक ही आयु वर्ग के होते है तथा उनमें समानता का संबंध होता है। बच्चे अपने मित्रों सहयोग और सदाचार तथा फैशन, जुनून, उत्साह, संतोष, तथा समाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण ऐसी अन्य सूचनाओं जैसे संस्कृति के कुछ शिक्षा प्रद पहलू सीखता है।

4) **शैक्षिक संस्थाएँ** : विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा अन्य शैक्षिक संस्थाओं से पाठ्यपुस्तकों, शिक्षकों तथा प्रयोगों की सहायता से प्राप्त शिक्षा व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विद्यालय ऐसा पहला स्थान है जहाँ व्यक्ति बच्चे के रूप में अनुशासन तथा अन्य व्यक्तियों के साथ समायोजन के औपचारिक तरीके सीखता है क्योंकि विद्यालय में काफी बच्चे होते हैं। शिक्षण संस्थाएँ ही व्यक्ति की योग्यता, दक्षता, का अधिकतम विकास करती है और इस प्रकार वे समाजिक अपेक्षाओं के अनुसार व्यक्तित्व के व्यक्तित्व का विकास करती है।

5) **व्यवसाय और रोजगार** : कार्य या व्यवसाय व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति किसी कार्य के लिए अपनी प्रेरणाओं के अनुसार अपने जीवन में परिवर्तन करते हैं। एक बार कार्य प्राप्त कर लेने के बाद उसके जीवन में बहुत से परिवर्तन आ जाते है। व्यवसाय व्यक्ति में प्रतियोगिता, परिश्रम और सहयोग की भावना पैदा करके उसे सामाजिक बनाते हैं।

6) राज्य : यह एक अधिकार संपन्न एजेंसी है जो नियम बनाती है, दूसरे शब्दों में यह लोगों के लिए आचार संहिता बनाता है। नियम राज्य द्वारा लागू किए जाते हैं। जैसे यातायात कानून, संपत्ति कर कानून आयकर कानून आदि लागू होते हैं और समाज के सदस्यों को इन नियमों का पालन करना होता है। यदि कोई इनकी अवज्ञा करता है तो उसे सजा दी जाती है। इस प्रकार राज्य इन नियमों को लागू कर समाज में इनकी अनुरूपता सुनिश्चित करता है तथा समाज के सदस्य राज्य की सजा से बचने के लिए इनका पालन करते हैं। इस प्रकार राज्य समाज की कार्य प्रणाली में स्थायीत्व को बढ़ावा देता है।

समाजीकरण के कार्य

जैसा कि इस अध्याय में पहले वर्णन किया जा चुका है कि समाजीकरण न केवल समाज के लिए अपितु व्यक्ति के लिए भी अनिवार्य है। यह तथ्य कि व्यक्ति अकेला नहीं जी सकता और समाज अपने सदस्यों के बिना टिक नहीं सकता, इस बात को अभिव्यक्त करता है कि समाज के सदस्यों में कार्यकारी सहअस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए एक उपयुक्त क्रियाविधि होनी चाहिए। समाजीकरण इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करता है। समाजीकरण के निम्नलिखित उद्देश्य है।

1) यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करता है तथा समाजीकरण प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति अपनी संपूर्ण मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं का उपयोग करना सीखता है।

2) समाजीकरण से समाज में एकरूपता तथा समरूपता स्थापित होती है।

3) यह व्यक्तियों की संस्कृति को आत्मसात करने में सहायता करता है।

4) समाजीकरण समाज के सदस्यों में मूलभूत अनुशासन पैदा करता है।

5) यह व्यक्तियों को सामाजिक दायित्व पूरे करना सिखाता है।

जीवन के बारे में जानना, उसकी असंख्य माँग, अवसर तथा अपेक्षाएँ पूरी करना जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। ऊपर की गई चर्चा से पता लगता है कि समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से समाज के सदस्य समूह के सदस्यों की तरह रहना सीखते हैं और युवाकाल से अर्धअवस्था तथा वृद्धावस्था में परिवर्तित होने वाले हमारे जीवन के लिए आवश्यक परिवर्तन करते हैं। बड़ा हो जाने पर भी समाजीकरण प्रक्रिया का अन्त नहीं हो जाता यह एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। तथा इसमें अनेक परिवर्तन एवं पड़ाव तथा परिवार से अलग अनेक समाजीकरण के एजेंट भी आते हैं। समकक्ष समूह, विद्यालय, कार्य समूह तथा लोक मीडिया आदि सभी उन महत्वपूर्ण शक्तियों के द्योतक हैं जो प्रक्रिया को जीवन में परिवर्तन के अनरूप बनाते हैं।

सारांश

इस अध्याय में आपका परिचय समाज से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं से कराया गया है। हमने समाज की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं की चर्चा की है जिसमें समाज का होना क्यों और करने है, इसकी बुनियादी जानकारी उपलब्ध कराई गई है। इसमें अगस्ताकोंम्टे, हरबर्ट स्पेंसर तथा थॉमस हॉब्बस के विभिन्न सिद्धांतों का विस्तार से वर्णन किया है। समाज का उद्गम और उसके कार्यों से संबंधित कुछ सिद्धांतों और नियमों के स्पष्ट किया है। समाज का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष समाजीकरण की इकाई में स्पष्ट किया है जिसमें उस प्रक्रिया के संबंध में बताया गया जिसके माध्यम से समाज अपने सदस्यों से सामाजिक मूल्यों, नियमों कानूनों आदि के पालन के लिए प्रभाव डालती है। सामाजिकरण की सहायता से व्यक्ति समाज को स्वयं स्वीकार करता है। प्राय: व्यक्ति स्वयं यह निर्णय लेता है कि वह (स्त्री/पुरूष) अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए उसे कितना दबाव डालना चाहिए और समुदाय के व्यापक हितों को पूरा करने के लिए कितना त्याग करना चाहिए इन दोनों के बीच वैयक्तिक निर्माण लेना होता है। इस प्रक्रिया के दौरान वह (स्त्री/पुरूष) यह महसूस कर सकता है/कर सकती है कि उसका शोषण किया जा रहा है अथवा वे ये सोच सकते हैं कि पाने से अधिक खोया जा रहा है। यहाँ तक कि दूसरी स्थिति में समाज अपने सदस्यों से बिना कारण के भी कुछ अपेक्षा कर सकती है जिसके कारण वैयक्तिक रूप से असामान्य व्यवहार का सामना करना पड़ सकता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

आर एम मैकाइवर एंड चार्ल्स एच पेज (1971), *सोसायटी*, द मैकमिलन प्रैस लि० लंदन एंड बैसिंगस्टोक।

रविन्द्र नाथ मुखर्जी एंड अरूणांशु घोसाल (1999), *सोसयल थोट फ्रोम कोमट टु मुखर्जी*, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।

किंग्सले डेविस (1981), *ह्यूमन सोसायटी*, सुरजीत पब्लिकेशनस, दिल्ली।

निकोल्स एस टिमासेफ (1967), *सोसियोलोजिकल थ्योरी, इट्स नेचर एंड ग्रोथ*, रैंडम हाऊस, न्युयार्क।